ISSN 2277 - 7865
Price : 50.00

तित्थयर

वर्ष : ३७ अंक : ०५ अगस्त २०१३

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित —

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं,
जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है।
जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास
कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

Nivesh Invest Pte. Ltd.

Mumbai-Singapore-Honkong-Shanghai

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३७ अंक - ५ अगस्त २०१३

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 006 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा
पी-एच.डी., डी.लिट्

Editorial Board :

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. Dr. Sagarmal Jain
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Prof. Anupam Jash
6. Dr. Abhijit Bhattacharyya
7. Dr. Peter Flugel
8. Dr. Rajiv Dugar
9. Smt. Jasmine Dudhoria
10. Smt. Pushpa Boyd

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	जैन दर्शन में प्रमाण विवेचन	प्रो. सागरमल जैन	२१३
२.	कुवलय माला	श्री केवल मुनि	२२१
३.	संकलन	मुनि श्री प्रकर्ष सागरजी महाराज	२४०

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : मंगोलिया से प्राप्त देवी सरस्वती का चित्र

Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

जैन दर्शन में प्रमाण विवेचन

प्रो. सागरमल जैन

जैनदर्शन में प्रमाण चर्चा एक परवर्ती अवधारणा है। नैयायिकों और बौद्धों के पश्चात् हीं जैनों ने प्रमाण विवेचन को अपना विषय बनाया है। सम्भवतः इसका काल लगभग ईसा की चौथी-पांचवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है, क्योंकि लगभग तीसरी शताब्दी के जैन ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र में **'ज्ञानं प्रमाणम्'** मात्र इतना ही उल्लेख मिलता है। जैन आगमों में भी प्रमाण (प्रमाण) शब्द का उल्लेख तो मिलता है, किन्तु उनमें प्रायः प्रमाण से क्षेत्रगत या कालगत परिमाण को ही सूचित किया गया है। प्राचीन स्तर के दिगम्बर ग्रन्थों में भी उक्त प्रमाण शब्द वस्तुतः नापतौल की ईकाई के रूप में ही देखा गया है। आगमों में केवल एक स्थान पर ही चार प्रमाणों की चर्चा हुई है, किन्तु वे चार प्रमाण वस्तुतः नैयायिकों के प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान प्रमाण के समरूप ही है। अतः यह कहा जा सकता है कि जैनों में प्रमाण चर्चा का विकास एक परवर्ती घटना है। आगमों में उक्त प्रमाण चर्चा का विशेष उल्लेख हमें नहीं मिलता है। जैसा कि हमने पूर्व में कहा आगमों में मात्र एक स्थान पर नैयायिकों का अनुसरण करते हुए चार प्रमाणों का उल्लेख देखा जा सकता है।

कालक्रम की अपेक्षा से आगमयुग के पश्चात् जैन दर्शन में **'अनेकान्त स्थापना'** का युग आता है। इसका काल लगभग चौथी शताब्दी से प्रारम्भ करके आठवीं-नवीं शताब्दी तक जाता है। इस काल खण्ड के प्रथम दार्शनिक सिद्धसेन दिवाकर और दिगम्बर परम्परा की अपेक्षा से समन्तभद्र माने जा सकते है। इस युग में प्रमाण चर्चा का विकास हो रहा था। इस युग में प्रमाण को परिभाषित करते हुए

जैनाचार्यों ने कहा– **'प्रमीयते येन तत् प्रमाणम्'** अर्थात् जिसके द्वारा जाना जाता है वह प्रमाण है, इस प्रकार ज्ञान का साधन है। तत्त्वार्थसूत्र में सर्वप्रथम प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो प्रमाणों का ही उल्लेख मिलता है, उसमें जैनों के द्वारा मान्य पांच ज्ञानों को ही इन दो प्रमाणों में वर्गीकृत किया गया है। कालान्तर में **'नन्दीसूत्र'** में प्रत्यक्ष प्रमाण के दो विभाग किये गये– 1. पारमार्थिक प्रत्यक्ष और 2. सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष। तत्त्वार्थसूत्र में प्रत्यक्ष के ऐसे दो विभाग नहीं करके मात्र पांच ज्ञानों में मति और श्रुतज्ञान को परोक्ष तथा अवधि, मनपर्यव तथा केवलज्ञान को प्रत्यक्ष कहा गया है। यह स्पष्ट है कि जैनों ने लगभग पाँचवीं शताब्दी में ही ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष को जो कि पूर्व में परोक्ष ज्ञान के अन्तर्गत ही आता था, लोक परम्परा का अनुसरण करते हुए सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष नाम दिया। इस प्रकार प्रत्यक्ष के दो विभाग सुनिश्चित हुए– सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। इनमें पारमार्थिक प्रत्यक्ष को आत्मिकप्रत्यक्ष और सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष को ऐन्द्रिक प्रत्यक्ष भी कहा गया। परोक्ष प्रमाण के विभागों की चर्चा परवर्तीकाल में उठी थी। दिगम्बर परम्परा में अकलंक ने प्रायः आठवीं शती में और श्वेताम्बर परम्परा में सिद्ध ऋषि ने लगभग नवीं शताब्दी में परोक्ष प्रमाण के पाँच भेद किये, जो क्रमशः इस प्रकार है– 1. स्मृति, 2. प्रत्यभिज्ञान (पहचानना), 3.तर्क, 4. अनुमान और 5. आगम। दिगम्बर परम्परा में आचार्य अकलंक ने भी प्रत्यक्ष को मिलाकर अपनी कृतियों में छः प्रमाणों की चर्चा की थी— 1. प्रत्यक्ष, 2. स्मृति, 3. प्रत्यभिज्ञान, 4. तर्क, 5. अनुमान और 6. आगम। किन्तु इस व्यवस्था के पूर्व जैनों में भी प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम या शब्द–ऐसे तीन ही प्रमाण माने थे। यद्यपि आगमों ने उपमान को प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया था, किन्तु कालान्तर में इसका अन्तर्भाव अनुमान में करके स्वतंत्र प्रमाण के रूप में इसका परित्याग कर दिया गया था। जहाँ तक भारतीय चिन्तन का प्रश्न है उसमें सामान्यतया जैनों को तीन प्रमाण मानने वाला ही स्वीकार किया गया है। भारतीय चिन्तन में प्रमाणों की

संख्या सम्बन्धी चर्चा को लेकर विभिन्न दर्शनों में इस प्रकार की व्यवस्था रही है–

1. चार्वाक – प्रत्यक्ष
2. वैशेषिक एवं बौद्ध दर्शन – 1. प्रत्यक्ष और 2. अनुमान
3. सांख्य एवं प्राचीन जैन दर्शन – 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान और 3. आगम या शब्द।
4. न्यायदर्शन – 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. शब्द और 4. उपमान।
5. मीमांसादर्शन (प्रभाकर सम्प्रदाय) – 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. शब्द 4. उपमान और 5. अर्थापत्ति।
6. मीमांसादर्शन का भाट्ट सम्प्रदाय और वेदान्त– 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. शब्द 4. उपमान 5. अर्थापत्ति और 6. अभाव।

प्रमाण लक्षण :– सामान्यतः प्रमाण शब्द से प्रमाणिक ज्ञान का ही अर्थबोध होता है। किन्तु कौन सा ज्ञान प्रमाणिक होगा इसके लिए विभिन्न दर्शनों में प्रमाण के लक्षणों का निरूपण किया गया है। सामान्यतः उस ज्ञान को ही प्रमाण माना जा सकता था, जो ज्ञान किसी अन्य ज्ञान या प्रमाण से खण्डित न हो, और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करे। किन्तु कालान्तर में प्रमाण के लक्षणों की चर्चा काफी विकसित हुई। सामान्यतः इसमें प्रमाण के स्वरूप को लेकर दो वर्ग सामने आये– प्रथम वर्ग में नैयायिकों (न्यायदर्शन) का कहना यह था कि प्रमाण वह है जो पदार्थ को उसके यथार्थ रूप में जानता हो, किन्तु इसके विपरीत दूसरे वर्ग में बौद्धों का कहना यह था कि प्रमाण वह है जो अपने स्वानुभूत ज्ञान को ही प्रामाणिक रूप से जानता है। इस दूसरे वर्ग ने प्रमाण के संबंध में यह निश्चित किया कि **'स्वानुभूत ज्ञान ही प्रमाण'** है। इस प्रकार प्रमाण-लक्षण के सन्दर्भ में पुनः दो मत देखे जाते है। जहाँ बौद्धों ने ज्ञान

को प्रमाण मानकर भी ज्ञाताकारता/तदाकारता को प्रमाण रूप माना जबकि जैनों ने इस तदाकारता का खण्डन करके स्व-पर प्रकाशक ज्ञान को प्रमाण रूप माना। जहाँ नैयायिकों का कहना था कि ज्ञान **'पर'** (पदार्थ) प्रकाशक है, अर्थात् ज्ञान के करण (साधन) ही प्रमाण होते है, वे **'इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष'** को प्रमाण मानते थे। जहाँ तत्त्वार्थसूत्र में जैनों ने **'तत् प्रमाणे'** कहकर ज्ञान को प्रमाण मानने के मत का समर्थन किया था, वहाँ नैयायिकों ने ज्ञान के करण अर्थात् साधन-इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष अर्थात् संयोग को ही प्रमाण माना, यद्यपि बौद्ध और जैन दोनों ज्ञान को ही प्रमाण मानते थे। जैनों के अनुसार न तो बौद्धों द्वारा मान्य ज्ञान में वस्तु की चेतना जो तदाकारता बनती है, वहीं ज्ञान रूपता प्रमाण है, और न नैयायिकों द्वारा मान्य **'इन्द्रियार्थसन्निकर्ष'** ही प्रमाण है। जैनाचार्यों ने इस सम्बन्ध में बौद्धों और नैयायिकों दोनों की आलोचना की। नैयायिकों के मत के अनुसार प्रमाण **'पर'** (पदार्थ) का प्रकाशक अर्थात् पदार्थ का ज्ञान कराने वाला होता है, जबकि बौद्धों ने यह माना था कि प्रमाण **'स्व'** अर्थात् अपने ज्ञान का ही ज्ञान कराता है, अर्थात् वह स्व-प्रकाशक है। इस प्रकार प्रमाण के लक्षण में दो प्रकार की अवधारणाएँ बनी– एक प्रमाण स्व-प्रकाशक है, और दूसरी प्रमाण पर (पदार्थ) प्रकाशक है। प्रमाण पर प्रकाशक है इस मत के समर्थक नैयायिक और वैशेषिक दर्शन थे, जबकि प्रमाण पर प्रकाशक है इस मत के समर्थक नैयायिक और वैशेषिक दर्शन थे, जबकि प्रमाण मात्र स्व प्रकाशक है इस मत के समर्थक विज्ञानवादी बौद्ध थे। जैनों के सामने जब प्रमाण के स्वप्रकाशकत्व और परप्रकाशकत्व का प्रश्न आया तो उन्होंने अपनी अनेकान्त दृष्टि के आधार पर उसे स्व-पर प्रकाशक माना। सर्वप्रथम श्वेताम्बर परम्परा में आचार्य सिद्धसेन ने न्यायावतार (1) में और दिगम्बर परम्परा में आचार्य समन्तभद्र ने सर्वार्थसिद्धि नामक तत्त्वार्थ सूत्र की टीका (1/10) में इस मत का समर्थन किया और इस प्रकार प्रमाण का जैनों ने जो लक्षण निर्धारित किया उसमें उन्होंने उसे **स्व** अर्थात् अपने

ज्ञान का तथा **पर** अर्थात् पदार्थ–ज्ञान का प्रकाशक माना। बौद्ध पदार्थ ज्ञान को इसलिए प्रमाणभूत नहीं मानते थे कि विज्ञानवादी बौद्ध ज्ञान से पृथक् ज्ञेय अर्थात् पदार्थ की स्वतंत्र सत्ता ही नहीं मानते थे।

आचार्य सिद्धसेन ने न्यायावतार की निम्न कारिका में इस बात को स्पष्ट किया है–

प्रमाणं स्वपराभासि ज्ञानं, बाधविवर्जितम्।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च द्विधा, मेयविनिश्चयात्।। –न्यायावतार 1

इस प्रकार न्यायावतार में प्रमाण का लक्षण करते हुए उसे स्व-पर दोनों का प्रकाशक माना है। साथ ही उसे बाघविवर्जित अर्थात् स्वतः सुसंगत भी माना गया है, सुसंगत होने का अर्थ है, अविसंवादित या पारस्परिक विरोध से रहित होना। इस प्रकार प्रारम्भ में प्रमाण के दो मुख्य लक्षण माने गये। इसके पश्चात् अकलंक ने बौद्ध परम्परा का अनुसरण करते हुए अष्टशती में बाघविवर्जित अर्थात् अविसंवादिता को भी प्रमाण का लक्षण स्वीकार किया गया। इसी क्रम में मीमांसकों के प्रभाव से अकलंक ने अनधिगतार्थक या अपूर्व को भी प्रमाण–लक्षण में संनिविष्ट किया गया। अकलंक और माणिक्यनंदी ने प्रमाण लक्षण के रूप में अपूर्व को अधिक महत्व दिया था। इस प्रकार जैन परम्परा में प्रारम्भ में प्रमाण के चार लक्षण माने थे– 1. स्वप्रकाशक, 2. परप्रकाशक, 3. बाधविवर्जित या असंविवादी, 4. अनअधिगतार्थक या अपूर्व। लगभग हेमचन्द्र के पूर्व तक जैन परम्परा में प्रमाण के यही चार लक्षण माने गये थे, किन्तु हेमचन्द्र इन्हें अन्य शब्दावली में प्रकट किया है, उनके अनुसार सम्यक् अर्थनिर्णयः ही प्रमाण है।

यद्यपि यह ठीक है कि हेमचन्द्र ने अपने प्रमाण-लक्षण-निरूपण में नयी शब्दावली का प्रयोग किया है, किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि उन्होंने अपने पूर्व के जैनाचार्यों के प्रमाण–लक्षणों को पूरी तरह से छोड़ दिया है। यद्यपि इतना अवश्य है कि हेमचन्द्र ने दिगम्बराचार्य

विद्यानन्द और श्वेताम्बरचार्य अभयदेव और वादिदेवसूरि का अनुसरण करके अपने प्रमाणलक्षण में अपूर्व पद को स्थान नहीं दिया है। साथ ही पं. सुखलालजी के शब्दों में उन्होंने **'स्व'** पद को, जो सभी पूर्ववर्ती जैनाचार्यों की परिभाषा में था, निकाल दिया। अवभास, व्यवसाय आदि पदों का भी स्पष्ट निर्देश नहीं किया और उमास्वाति, धर्मकीर्ति, भावसर्वज्ञ आदि के **'सम्यक्'** पद को अपनाकर **'सम्यगर्थनिर्णयः'** प्रमाणम् के रूप में अपना-प्रमाणलक्षण प्रस्तुत किया। इस परिभाषा या प्रमाण-लक्षण में सम्यक् पद किसी सीमा तक पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रयुक्त बाधविवर्जित या अविसंवादिता का ही पर्याय माना जा सकता है **'अर्थ'** शब्द का प्रयोग बौद्धों के विज्ञानवादी दृष्टिकोण का खण्डन करते हुए प्रमाण के **'पर'** अर्थात् वस्तु के अवबोधक होने का सूचक है, जो जैनों के वस्तुवादी (Realistic) दृष्टिकोण का समर्थक भी है।

पुनः **'निर्णय'** शब्द जहाँ एक ओर अवभास, व्यवसाय आदि का सूचक है, वहीं दूसरी ओर वह प्रकारान्तर से प्रमाण के **'स्वप्रकाशक'** होने का भी सूचक हैं। इस प्रकार प्रमाण-लक्षण-निरूपण में अनधिगतार्थक या अपूर्वार्थग्राहक होना ही एक ऐसा लक्षण है, जिसका हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती श्वेताम्बर आचार्यों के समान परित्याग किया हैं। वस्तुतः स्मृति को प्रमाण मानने वाले जैनाचार्यों को यह लक्षण आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ। श्वेताम्बर परम्परा ने तो उसे कभी स्वीकार ही नहीं किया। दिगम्बर परम्परा में भी अकलंक और माणिक्यनन्दी के पश्चात् विद्यानन्द ने इसका परित्याग कर दिया। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र ने अपने पूर्वाचार्यों के दृष्टिकोणों का सम्मान करते हुए और उनके प्रमाण-लक्षणों को सन्निविष्ट करते हुए प्रमाणमीमांसा में **'प्रमाण'** की एक विशिष्ट परिभाषा प्रस्तुत की है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्रमाण-लक्षण-निरूपण में **'स्व'** पद क्यों नहीं रखा, इसका उत्तर स्वयं उन्होंने प्रथम अध्याय के प्रथम आह्निक के चतुर्थ पद की स्वोपज्ञ टीका में दिया है, उन्होंने बताया है

कि ज्ञान तो स्व-प्रकाश ही है, किन्तु **'पर'** का व्यावर्तक नहीं होने से लक्षण में इसका प्रवेश अनावश्यक है। पं. सुखलालजी के अनुसार ऐसा करके उन्होंने एक ओर अपने विचार-स्वातन्त्र्य का स्पष्ट किया वहीं दूसरी ओर पूर्वाचार्यों के मत का खण्डन न करके, **'स्व'** पद के प्रयोग करने की उनकी दृष्टि दिखाकर उनके प्रति आदर भी व्यक्त किया। साथ ही ज्ञान के स्वभावतः स्व-प्रकाशक होने से उन्होंने अपने प्रमाण-लक्षण में **'स्व'** पद नहीं रखा।

इसी प्रकार आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्रमाण-लक्षण में **'अधिगत'** या **'अपूर्व'** पद क्यों नहीं रखा? इसका उत्तर भी प्रमाणमीमांसा में धारावाहिक ज्ञान के प्रामाण्य और अप्रामाण्य की चर्चा में मिल जाता है। भारतीय दर्शन में धारावाहिक ज्ञान के प्रमाण्य और अप्रमाण्य को लेकर दो दृष्टिकोण उपलब्ध होते हैं। एक ओर न्याय-वैशेषिक और मीमांसकों के प्रभाकर एवं भाट्ट सम्प्रदाय कुछ सूक्ष्म मतभेदों को छोड़कर सामान्यतया धारावाहिक ज्ञान के प्रामाण्य को स्वीकार करते है, दूसरी ओर बौद्ध परम्परा सामान्य-व्यक्ति (प्रमाता) के ज्ञान में सूक्ष्म काल-भेद का ग्रहण नहीं होने से धारावाहिक ज्ञान को अप्रमाण मानती है। यद्यपि कुमारिल भट्ट की परम्परा भी अपने प्रमाण-लक्षण में अपूर्व पद रखने के कारण सूक्ष्म काल-कला के भान (बोध) को मानकर ही उसमें प्रामाण्य का उत्पादन करती है। इसी प्रकार बौद्ध दार्शनिक अर्चट ने अपने हेतुबिन्दु की टीका में सूक्ष्म-कला के भान के कारण योगियों के धारावाहिक ज्ञान को प्रमाण माना है।

जहाँ तक जैनों का प्रश्न है, सामान्यतया कुछ दिगम्बर आचार्यों ने अपने प्रमाण-लक्षण में **'अपूर्व'** पद को स्थान दिया है, अतः उनके अनुसार भी धारावाहिक ज्ञान, जब क्षण भेदादि की स्थिति में विशेष का बोध कराता हो और विशिष्ट प्रमाजनक हो तभी प्रमाण कहा जाता है। इसके विपरीत श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य अपने प्रमाण-लक्षण में **'अपूर्व'** पद नहीं रखते हैं और स्मृति के समान धारावाहिक ज्ञान को

भी प्रमाण मानते हैं। श्वेताम्बर आचार्यों में हेमचन्द्र ने अपने प्रमाणलक्षण में **'अपूर्व'** पद क्यों नहीं रखा, इसका उत्तर भी उनकी प्रमाणमीमांसा में मिल जाता है। आचार्य स्वयं ही स्वोपज्ञ टीका में इस सम्बन्ध में पूर्वपक्ष की उद्भावना करके उत्तर देते हैं। प्रतिपक्ष का कथन है कि धारावाहिक स्मृति आदि ज्ञान अधिगतार्थक पूर्वार्थक हैं और इन्हें सामान्यतया अप्रमाण समझा जाता है। यदि भी इन्हें अप्रमाण मानते हो तो (तुम्हारा) सम्यगर्थनिर्णय रूप लक्षण अतिव्याप्त हो जाता है? प्रतिपक्ष के इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य हेमचन्द्र ने कहा था कि यदि धारावाहिक ज्ञान और स्मृति प्रमाण है तो फिर प्रमाण के लक्षण में अपूर्व या अनधिगत पद निरर्थक हो जाता है। पं. सुखलालजी का कथन है कि- श्वेताम्बर आचार्यों में हेमचन्द्र की खास विशेषता यह है कि उन्होंने गृहीतग्राही और ग्रहीष्यमाणग्राही में समत्व दिखाकर सभी धारावाहिक ज्ञानों में प्रामाण्य का जो समर्थन किया है, वह विशिष्ट है। यही कारण है कि हेमचन्द्र ने अपने प्रमाण-लक्षण में अपूर्व या अनधिगत पद की उद्भावना नहीं की है।

वस्तुतः हेमचन्द्र की प्रमाण-लक्षण की अवधारणा हमें पाश्चात्य तर्कशास्त्र के सत्य के संवादितासिद्धान्त का स्मरण करा देती है। पाश्चात्य तर्कशास्त्र में सत्यता-निर्धारण के तीन सिद्धान्त हैं– 1. संवादिता सिद्धान्त, 2. संगति सिद्धान्त और 3. उपयोगितावादी या अर्थक्रियावादी सिद्धान्त। उपर्युक्त तीन सिद्धान्तों में हेमचन्द्र का सिद्धान्त अपने प्रमाण-लक्षण में अविसंवादित्य और अपूर्वता के लक्षण नहीं होने से तथा प्रमाण को सम्यगर्थनिर्णयः के रूप में परिभाषित करने के कारण सत्य के संवादिता सिद्धान्त के निकट हैं। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र ने प्रमाण-लक्षण-निरूपण में अपने पूर्वाचार्यों के मतों को समाहित करते हुए भी एक विशेषता प्रदान की है। प्रमाण लक्षण निरूपण में यही उनका वैशिष्ट्य है।

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

मणिरथकुमार :

भगवान महावीर का समवसरण काकंदी नगरी के बाहर लगा हुआ था। प्रभु विराजमान थे। काकंदी नरेश कंचनरथ भी अपनी पटरानी सहित उसमें बैठे हुए थे। असंख्य नर-नारी, पशु-पक्षी, देव-गंधर्व उपस्थित थे। सभी भगवान की अमृतोपम वाई का पान कर रहे थे। देशना में भगवान ने सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप रत्नत्रय का सारगर्भित स्वरूप समझाया। पाँचों महाव्रतों और श्रावक के बारह व्रतों का अतिचार सहित वर्णन किया।

अहिंसा अणुव्रत और उसके अतिचारों को सुनकर राजा कंचनरथ को अपने पुत्र मणिरथकुमार के विषय में जिज्ञासा हुई मणिरथ उनका इकलौता लाड़ला पुत्र था। बहुत समझाने पर भी वह आखेट से बिरत नहीं होता था। शिकार उसका व्यसन-सा बन गया था। राजा ने अंजलिबद्ध होकर पूछा–

भगवन्! मेरा पुत्र मणिरथ भवी है या अभवी?

अंतर्यामी भगवान राजा के हृदयगत गंभीर भावों को समझते थे। धीर गम्भीर वाणी में बोले–

राजन्! कुमार मणिरथ भव्य है। वह इसी भव से मोक्ष भी जायगा।

राजा को किंचित् आश्चर्य हुआ। सर्वज्ञ के वचनों पर शंका का प्रश्न तो था ही नहीं किन्तु कुमार की प्रवृत्ति के कारण बात बुद्धि से परे थी। पुनः प्रश्न किया–

प्रभो! आखेट व्यसनी और इसी भव से मुक्त होगा?

राजन्! यह कर्मों की विचित्रता है।

वह कब प्रतिबुद्ध होगा? कब लेगा आपकी शरण?

उसके हृदय में संवेग जाग्रत हो चुका है। शीघ्र ही यहाँ आयेगा।

राजा कंचनरथ और भी आश्चर्यचकित हो गया। पूछा–

कैसे जाग्रत हुआ संवेग भाव? क्या कारण बना?

एक हिरनी इसका कारण है।

हिरनी?

हाँ! अधिक ऊहापोह की आवश्यकता नहीं। वह आ ही रहा स्वयं बताएगा।

भगवान मौन हो गए। सम्पूर्ण धर्म-भा उत्सुकतापूर्वक कुमार मणिरथ की प्रतीक्षा करने लगी।

कुछ ही समय बाद कुमार मणिरथ एक हिरनी को गोद में लिए आता दिखाई दिया। राजा कंचनरथ ने देखा, सबने देखा– कुमार के मुख पर संवेग का भाव झलक रहा था; शिकारी की क्रूरता अदृश्य हो गई थी। मंद-मंद कदमों से प्रभु के समीप आया। भक्ति पूर्वक वंदना करके कहने लगा–

प्रभो! मैं यहाँ से एक योजन दूर कौशांब वन में शिकार के लिए गया था। वहाँ हिरणों का समूह स्वच्छन्द विचरण कर रहा था। मेरी आहट पाते ही अन्य सब हिरण तो भाग गए किन्तु यह हिरणी वहीं खड़ी रही। स्नेहपूर्ण दृष्टि से मुझे देखने लगी। इसकी दृष्टि में न जाने क्या जादू था कि मेरे अंग शिथिल हो गए। धनुष पर चढ़ा बाण झुक गया। खींची हुई प्रत्यंचा ढीली पड़ गई। यह मुझे निर्निमेष देख रही थी और मैं इसे। धीरे-धीरे यह मेरे पास आई और मैंने भी इसे प्यार से सहलाया, पीठ पर हाथ फेरा। वह मुझे चाटने लगी।

देवाधिदेव! मुझ जैसे क्रूर हृदय पुरुष के हृदय में यह दया का संचार, आश्चर्य की वस्तु है। ऐसा लगता है कि मेरा इसके साथ किसी पूर्व जन्म का सम्बन्ध है। किन्तु क्या सम्बन्ध है, कैसा है, कब का है, कुछ नहीं मालूम। आप मेरी जिज्ञासा शांत करिए।

त्रिभुवन तिलक प्रभु महावीर कहने लगे–

देवानुप्रिय! इससे तुम्हारा पूर्व-जन्म का सम्बन्ध है, सुनो–

साकेतनगर में मदनसेन नाम का राजा राज्य करता था। मैं उसका पुत्र अनंग कुमार[1] था। उसी नगर में वैश्रमण नाम का एक धनी सेठ रहता था। उसके पुत्र का नाम था प्रियंकर। प्रियंकर सौम्य, सुन्दर, सज्जन और अनेक गुण सम्पन्न था। पिता ने उसका विवाह समान कुलशील वाली वणिक्-पुत्री सुन्दरी से किया। सुन्दरी वैश्रमण सेठ के एक मित्र की पुत्री थी। वह भी शीलवती और धर्मानुरागिणी थी।

समान विचारधारा वाले पति-पत्नी में प्रेम दिनोंदिन बढ़ने लगा। स्थिति यहाँ तक आ गई कि एक क्षण का भी विरह असह्य हो जाता। माता-पिता और परिवार के लोग इस प्रेम सम्बन्ध से सुखी थे। किन्तु दैव से उनका सुख नहीं देखा गया और श्रेष्ठिपुत्र प्रियंकर बीमार पड़ गया। सुन्दरी के लिए तो यह वज्रपात ही था। वह सब कुछ भूलकर पति-सेवा में जुट गई। न वह कुछ खाती, न सोती–बस रात-दिन पति की शय्या से चिपकी रहती। परिवार के लोग और वृद्धजन समझाते तो भी उसके कान पर जूँ न रेंगती। सुन्दरी की इस सेवा का भी कोई परिणाम न निकला। प्रियंकर के प्राण पखेरू उड़ गए।

पुत्र-शोक से विह्वल माता-पिता विलाप करने लगे। समस्त परिवार शोक में डूब गया, किन्तु सुन्दरी की आंखों में आंसू न आए। उसे पति की मृत्यु का विश्वास ही न हुआ।

---

1. अनंगकुमार स्वयं भगवान महावीर का जीव था। यह घटना उनके किसी पूर्व भव से सम्बन्धित है। –संपादक

शोक भी कब तक मनाया जाता। परिवार वालों ने कड़ा दिल करके उसकी अंत्येष्टि करने का विचार किया। जब वे उसके शव को उठाने लगे तो सुन्दरी ने पूछा–

इन्हें कहाँ ले जा रहे हैं, आप लोग?

यह मर गया है, अब इसका अग्नि संस्कार करेंगे। एक कुटुम्बी ने कह दिया।

सुन्दरी ने विरोध किया–

ये मरे नहीं है। मैं इनका अग्नि-संस्कार नहीं होने दूँगी।

सास-ससुर ने समझाया। सुन्दरी की माता ने भी प्रयास किया। पिता भी कह-सुनकर हार गए। जब वह किसी तरह न मानी तो लोग उसे दूर हटा कर शव को उठाने लगे। किन्तु सुन्दरी बिफर गई। वह पति के शव से लिपट गई। क्रोध से लाल आँखें करके बोली–

जलाना है तो किसी और को जलाओ। तुम सब जल मरो। मेरे जीवित पति को जलाते हुए तुम लोगों को शर्म नहीं आती।

लोगों ने बहुत प्रयास किया किन्तु जब उसने किसी की बात पर ध्यान न दिया, अपनी जिद न छोड़ी तो उन्हें उस पर दया आ गई। अभी यह शोक से बेभाग हो रही है, दो चार दिन में शोक कम हो जायेगा, तो स्वयं ही जिद छोड़ देगी। तब शव का दाह-संस्कार कर देंगे–यह कहकर चले गए।

परिवार वाले भी अपने काम में लग गए। सुन्दरी के पास तो एक ही काम था–पति के शव के पास बैठे रहना। उसने लोक-लाज त्याग दी थी। वह खुद न खाती, पति के शव को खिलाने का प्रयास करती, पति के शरीर को नहलाती, धुलाती, उसके चरण चाँपती, भांति-भाँति से रिझाने का प्रयास करती।

कुछ दिन तक तो लोग उस पर दया करते रहे किन्तु जब उसको प्रेमोन्माद न घटा तो दया का स्थान घृणा ने ले लिया। अब लोगों की इच्छा यह थी कि यह उन्मादिनी या तो अपनी जिद छोड़े अथवा गृहत्याग करे। सास-ससुर तो क्या घर के दास-दासी भी व्यंगवाणों से उसका हृदय व्यथित करने लगे। पागल को कौन घर में रखे और पागल भी ऐसा सि शव के पास ही बैठा रहे, उसका दाह-संस्कार भी न होने दे। जब शव से दुर्गन्ध आने लगी तो व्यंगवाण भी नुकीले हो गए। सुन्दरी के हृदय को बेध-बेध जाते। व्यथित होकर सुन्दरी ने पति का शव उठाया और दीन-दुनिया से दूर शमशान के एकान्त कोने में जा बैठी। उसने संसारी नाते-रिश्ते त्यागे किन्तु पति का शव न त्यागा। वाह रे! मोह के प्रगाढ़ बन्धन।

पुत्री के इस पागलपन से पिता भी दुःखी था। चलते-चलाते लोग फिकरा कस ही देते–इन्हीं सेठजी की पुत्री है वह प्रेमोन्मादिनी। दुःखी पिता ने राजा मदनसेन से विनय की–

नरनाथ! मैं बहुत दुःखी हूँ। मेरा दुःख दूर करिए।

क्या दुःख है, सेठजी, तुम्हें? राजा ने पूछा।

सेठ ने सम्पूर्ण हकीकत सुनाकर कहा–

किसी तरह पुत्री का यह भूत उतरे तो.....

राजा को एक राह मिली उसने कहा–

सेठजी! हो सकता है उस पर किसी भूत-प्रेत की छाया हो? किसी गारुड़ी, मन्त्रबिद्, तांत्रिक से उपचार कराइये।

सब कराके देख लिये महाराज! यन्त्र-मन्त्र, औषधि-तन्त्र सब विफल हो गए। न मालूम उसे क्या हो गया है? लोगों के व्यंगवाणों ने मेरा भी जीवन दुभर कर दिया है। वह मर जाय तो ही अच्छा है।

यह सुनते ही अनंगकुमार के हृदय में करुणा स्रोत बहने लगा। जो पिता अपनी पुत्री की मृत्यु की इच्छा करे–उसके दुःख का क्या पार होगा? पुत्री तो प्रेम-पिशाच ने जकड़ ही ली है। वह बोला–

सेठजी! ऐसे अशुभ वचन न कहिए। वह आपकी पुत्री है।

आँखों में आँसू भर कर सेठ बोला—

क्या करूँ कुमार! मेरे हृदय की वेदना मैं ही जानता हूँ। कहावत है जिसकी बेटी दुखी, उसका जनम दुखी। अपनी दुःख ही क्या कम है, उस पर लोगों के व्यंगबाण! आप ही कुछ करिए। उसका पागलपन छूटे और मेरा जनम सुखी हो।

कुमार ने आश्वासन दिया—

यदि पिताश्री आज्ञा दें तो मैं प्रयास कर सकता हूँ।

राजा मदनसेन तुरन्त बोल उठे—

पुत्र! हमारा कर्तव्य ही प्रजा को सुखी करना है। यदि तुम्हें स्वयं पर विश्वास है तो अवश्य इनकी पुत्री को समझाओ।

मेरा ढंग कुछ दूसरा होगा। कुमार ने कहा।

ढंग कोई भी हो। हमें आम खाने से मतलब पेड़ गिनने से नहीं। श्रेष्ठि-पुत्री ठी होनी चाहिए। —राजा ने स्वीकृति दे दी।

राजकुमार ने सेठ से पूछा—

आपको तो कोई ऐतराज नहीं, सेठजी?

सेठ ने विनम्र स्वर में कहा—

क्या कह रहे हैं, कुमार आप? मैं तो आपकी प्रजा हूँ। आप मेरी खातिर कष्ट उठायें और मुझे एतराज! आप जो कुछ करेंगे। मुझे सब स्वीकार है।

पिताश्री से आज्ञा पाकर अनंगकुमार दूसरे दिन ही महल से चल दिया। अब वह राजकुमार न होकर एक साधारण युवक था। उसके तन पर कोई अलंकार नहीं था। कहीं से उसने एक स्त्री का शव उठाया और जा पहुँचा शमशान में। सुन्दरी से थोड़ी दूर शव को रखा और जो-जो क्रिया सुन्दरी करती, वही वह भी करने लगा। वह स्त्री के मृत शरीर को नहलाता-धुलाता, भोजन कराने का प्रयास करता और उससे मीठी-मीठी बातें करता।

सुन्दरी ने उसकी यह दशा देखी तो पूछा–

यह तुम क्या करते हो?

तुम्हें इससे मतलब मैं कुछ भी करूँ। अनंगकुमार ने रुखाई से कह दिया।

अपने समान ही जानकर सुन्दरी को उससे सहानुभूति हो आई। उसने मीठे शब्दों में पूछा–

नाराज क्यों होते हो? मुझे बताओ, यह स्त्री तुम्हारी कौन है?

अनंगकुमार ने बताया–

यह मेरी स्त्री मायादेवी है। कुछ दिन पहले बीमार पड़ी। अचानक ही इसने बोलना बन्द कर दिया तो लोगों ने इसे मरी घोषित कर दिया। वे इसका दाह-संस्कार करने को उद्यत हुए। मैं उन सबसे बचाकर इसे यहाँ ले आया।

सुन्दरी बोली–

लोग तो ऐसे ही मूर्ख हैं। मेरे साथ भी यही हुआ। तुम यहाँ चले आये, बड़ा अच्छा किया।

दोनों दीवाने थे। एक वास्तविक दीवानी थी तो दूसरा बनावटी। लेकिन थे दोनों समान–बाह्य क्रियाओं में कोई अन्तर न था। दोनों में घनिष्ठता हो गई। एक दूसरे पर विश्वास करने लगे। अब एक नगर में भिक्षाटन के लिए जाता तो दूसरे को अपने वाले शव की रखवाली करने को कह जाता। दोनों शव भी पास-पास रख दिये गए। विश्वास जो था। अनंगकुमार को सुन्दरी ने अपना भाई बना लिया और उसने सुन्दरी को बहन। दोनों बहन-भाई एक-दूसरे पर विश्वास करते हुए समय बिताने लगे।

एक दिन सुन्दरी अपने पति के शव को अपने मुँह बोले भाई अनंगकुमार के संरक्षण में छोड़कर किसी काम से गई। वापिस आई तो भाई को नाराज पाया। कारण पूछा तो उसने बताया–

बहन! तुम्हारे पति ने मेरी पत्नी के कान में कुछ कहा है। क्या कहा, यह तो मैं नहीं सुन पाया, पर यह कार्य बुरा है।

सुन्दरी को भी पति की इस हरकत से क्षोभ हुआ। उसने पति के शव से कहा—

तुम्हारे लिए मैंने अपने कुल, घर और सर्वस्व का त्यागकर दिया फिर तुम दूसरी स्त्री की इच्छा करते हो, कितनी शर्म की बात है।

भाई अनंतकुमार ने उसका क्षोभ शान्त करने का प्रयास किया-

रहने दो बहन कोई बात नहीं है। पति से ऐसे शब्द नहीं कहते। अब ये ऐसी गलती नहीं करेंगे।

बहन सुन्दरी का कोप शान्त हो गया; किन्तु उसके प्रेम में दरार पड़ गई। वह बोली—

तुम्हारे कहने से चुप हो जाती हूँ। किन्तु इन्होंने मेरे प्रेम को ठेस लगाई है। इनका यह कर्म अनुचित है। मुझसे तो बोलते तक नहीं और दूसरी स्त्री से काना-फूसी करते हैं।

अनंगकुमार के समझाने से सुन्दरी मान गई। कुछ दिन बाद सुन्दरी नगर में भिक्षाटन के लिए गई अनंगकुमार ने अवसर देखकर दोनों शवों को एक कुए में फेंक दिया और उसे ढूँढ़ता हुआ नगर में जा पहुँचा। सुन्दरी उसे देखते ही ठिठक गयी, पूछने लगी–

भाई! मेरे पति को छोड़कर तुम यहाँ क्यों चले आए?

आवश्यक कार्य आ गया था, इसलिए मुझे आना पड़ा। मैं तुम्हारे पति को अपनी पत्नी सौंप आया हूँ।

सुन्दरी ने कहा–जल्दी चलो। और दोनों घबड़ाते हुए शमशान में जा पहुँचे, किन्तु यहाँ न माया देवी थी और न प्रियंकर। स्थान रिक्त पड़ा था। हाय तुम्हारा पति मेरी पत्नी को भगा ले गया कहकर अनंगकुमार भूमि पर गिर गया और मूर्च्छित होने का दिखावा किया। सुन्दरी अपना दुःख तो भूल गयी, और अनंगकुमार को सचेत करने का प्रयास करने

लगी। सचेत होकर तो अनंगकुमार ने आसमान ही सिर पर उठा लिया। वह जोर-जोर से विलाप करने लगा। पहले तो सुन्दरी हतप्रभ हुई और फिर उसे अपने पति पर क्रोध आया। वह विचार करने लगी—मेरा पति कितना कृतघ्नी और क्रूर है? जिसके लिए मैंने सर्वस्व त्यागा, वह मुझे ही छोड़ गया। ऐसे पुरुष का तो मुँह भी न देखना चाहिए।

अनंगकुमार रोता भी जाता और सुन्दरी की भाव-मुद्राओं को भी पढ़ता जाता। सुन्दरी ने उसे समझाने का प्रयास किया—

भाई! अब तुम्हारी पत्नी कहाँ मिलेगी? मैं तो कहीं की न रही। पति भी गया लोक-लाज भी खोई। कुछ समझ में नहीं आता क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? पति ने तो मुझे मुँह दिखाने योग्य भी न छोड़ा। और वह हिचकियाँ लेकर रो पड़ी।

अब सांत्वना देने लगा अनंगकुमार! जब उसका शोकावेग कुछ कम हुआ तो बोली—

भाई! अब तो तुम्हारा ही सहारा है। मैं अकेली ही रह गई। मेरी तो बुद्धि काम नहीं करती। तुम्हीं कुछ बताओ।

अनंगकुमार समझ गया कि इसका प्रेमोन्माद दूर हो गया है। इसे समझाने का यही उचित अवसर है। सांत्वनापूर्ण मधुर स्वर में कहने लगा—

बहन! इस संसार में कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी? सभी स्वार्थ के रिश्ते हैं, क्षणभंगुर है, बनते-बिगड़ते रहते हैं। प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है। यह जीवन अनित्य है। जो जन्मा है, मरेगा अवश्य। कोई दो दिन पहले और कोई दो दिन पीछे।

प्राणी का कोई शरण नहीं है। मृत्यु से कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता। न बन्धु, न बांधव, न पिता, न माता, और तो और देवी, देवता भी उसकी रक्षी नहीं कर सकते।

इस संसार में जीव अकेला ही जन्म लेता है। और अकेला ही मर जाता है। उसका कोई साथी नहीं, कोई संगी नहीं। सब यहीं रह जाते हैं, अकेला जीव ही चला जाता है।

शरीर भी तो यहीं पड़ा रह जाता है। आत्मा अलग है और शरीर अलग। जब शरीर ही साथ नहीं देता तो किसी और से क्या आशा करना। शरीर, मन, इन्द्रिय इन सबसे आत्मा अलग है।

यह मानव तन जिसके मोह में मनुष्य कर्म-अकर्म सब करता है, पुष्ट बनाने में लगा रहता है—अशुचि का भण्डार ही तो है। मल-मूत्र, रक्त, मांस आदि की थैली ही है। इसके अन्दर अशुचि ही तो भरी है। ऊपर से केवल चमड़ी मढ़ी हुई है, जैसे विष्टा के ढोल पर सुन्दर वस्त्र।

इस शरीर के लिए, इन्द्रियों के लिए, मनुष्य अनेक प्रकार के निद्य कर्म करता है। इन्द्रिय विषयों में पड़कर पाप-कर्मों का द्वार खोलता है और उन पाप-कर्मों का बंध कर देता है।

इस दुखों के समूह और संयोग-वियोग के परिताप से बचने के लिए धर्म की शरण लेनी चाहिए, क्योंकि धर्म ही सब सुखों का मूल है।

सुन्दरी के हृदय का प्रगाढ़ मोहान्धकार कुछ कम हुआ—विवेक जागा। उसने पूछा—

भाई! अब मैं क्या करूँ? मेरे योग्य कर्तव्य बताओ।

अनंगकुमार ने समझाया—

बहन! अब तुम घर जाओ। गुरुजनों और सास-ससुर की सेवा करो। उनके संरक्षण में जिनेश्वर कथित धर्म का पालन करो। इस समय तुम्हारे लिये यहीं उचित है।

सुन्दरी ने यह बात स्वीकार कर ली। वह अपने सास-ससुर के घर पहुँची। उन्होंने भी उसे आदरपूर्वक घर में स्थान दिया। सुन्दरी के अन्तर्मानस में सम्यक्त्व का बीज वपन हो चुका था। वह जिनधर्म पर श्रद्धा रखती हुई शील धर्म का पालन करने लगी।

राजकुमार अनंग का यश भी नगर में व्याप्त हो गया।

सुन्दरी अपना आयुष्य पूर्ण कर मानभट्ट के रूप में उत्पन्न हुई। मानभट्ट की पर्याय में धर्मनन्दन आचार्य के चरणों में श्रमणाचार का पालन किया। आयुष्य पूर्ण करके सौधर्म देवलोक में पद्मसार देव बना। वहाँ से च्यवकर अयोध्या नरेश दृढ़धर्म का पुत्र कुवलयचन्द्र हुआ और आचार्य दर्पफलिह के समीप प्रव्रजित हो गया। संयम पालन करते हुए देह त्यागी और सौधर्म देवलोक में वेरुलिय देव उत्पन्न हुआ। वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण कर काकंदी नरेश का पुत्र मणिरथ कुमार बना है।

प्रियंकर का जीवन संसार-समुद्र में भटकते हुए हिरणी हुआ है।

भगवान महावीर ने सम्पूर्ण कथा सुनाकर मणिरथ कुमार से कहा-

देवानुप्रिय! पूर्व-जन्म के इस सम्बन्ध के कारण ही तुम दोनों में स्नेह का उद्रेक हुआ है।

अपने पूर्व-जन्मों की घटना सुनकर मणिरथकुमार के हृदय में वैराग्य सागर लहराने लगा। उसने भगवान से प्रार्थना की–

प्रभो! अब मैं इस जन्म-मरण रूपी संसार चक्र से छुटकारा पाना चाहता हूँ। आप मुझे अपने संघ में स्थान दीजिए।

मणिरथकुमार ने तत्काल पंचमुष्टि लोच किया और श्रमण संघ में जा बैठा। वह प्रभु के चरणों में प्रव्रजित हो गया।

इस कथा को सुनकर गणधर गौतम ने भगवान के समक्ष जिज्ञासा प्रकट की–

प्रभो! तिर्यंच गति का बन्धन किन कर्मों से होता है!

भगवान ने बताया–

गौतम! स्वार्थसिद्धि के लिए मित्र की सेवा करने वाला और स्वार्थसिद्धि के बाद उसे ठोकर मार देने वाला, कपटी और मायावी जीव तिर्यंच गति का बंध करता है।

और स्त्री पर्याय के बन्ध का क्या कारण है?–गौतम ने पुनः पूछा।

चपल, दुष्ट स्वभाव वाला, छल-कपट से स्वजनों को धोखा देने वाला स्त्री पर्याय का बंध करता है। –भगवान ने फरमाया।

गौतम ने पुनः जिज्ञासा प्रकट की–

भगवन्! इस संसार में सबसे अधिक दुःखी कौन है?

एक दृष्टि से–अविरत सम्यग्दृष्टि।

चकित होकर गौतम ने पूछा–

सो कैसे प्रभु?

भगवान ने फरमाया—

इसलिए कि सम्यग्दृष्टि नरक के दुःखों को जानता है, संसार से भयभीत रहता है। किन्तु भोगावली कर्मों के कारण प्रव्रजित नहीं हो पाता। इसी कारण वह दुःखी रहता है।

और सबसे सुखी कौन है? गौतम के मुख से पुनः प्रश्न उद्‌बुद्ध हुआ।

संयमी श्रमण! क्योंकि वह संसार से मुक्ति के प्रयास में लीन है। अपनी शुद्ध आत्मा का चितवन करता हुआ कर्मजंजीर को काट लेता है। भगवान ने बताया।

सम्पूर्ण सभा भगवान के इस सूक्ष्म विवेचन से हर्षाभिभूत हो गई।

कामगजेन्द्र :

चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी में आए। देवों ने समवसरण रचा। देवेन्द्र की प्रार्थना पर भगवान ने जगत-भ्रमण का कारण समझाया।

उसी समय एक सुदर्शन राजकुमार ने धर्म-सभा में प्रवेश किया। उसके कंठ में हार सुशोभित था और कानों में मणिकुंडल। उसकी आजानु भुजाएँ, विशाल वक्षस्थल और देदीप्यमान ललाट उसके तेजस्वी क्षत्रिय कुमार होने के परिचायक थे। उसने भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान की वंदना की और अंजलिबद्ध होकर पूछा—

सर्वज्ञ प्रभो! आज रात मैंने जो देखा, सुना, अनुभव किया–वह सत्य था, स्वप्न था या इन्द्रजाल था?

प्रभु ने उत्तर दिया–

देवानुप्रिय! न वह स्वप्न था और न इन्द्रजाल। तुमने जो देखा वह सत्य था।

यह सुनते ही उस युवक ने भगवान को नमन किया और शाघ्रतापूर्वक समवसरण से निकल गया।

युवक के इस अद्‌भुत आचरण से गौतम गणधर के हृदय में जिज्ञासा जागी–

भंते! यह पुरुष कौन है? इसके प्रश्न का रहस्य क्या है? इन्द्रादिक देवों ने भी प्रार्थना की–

देवाधिदेव! हमारे हृदय में भी उत्सुकता है। हम पर अनुग्रह करके इस रहस्य को प्रगट करिए।

भगवान ने सबकी प्रार्थना स्वीकार की। गम्भीर वाणी में कहने लगे-

यहाँ से थोड़ी ही दूर अरुणाभ नाम का नगर है। नगर प्राकृतिक शोभा से समृद्ध है। उस नगर के राजा का नाम है–रणगजेन्द्र। राजा रणगजेन्द्र शूरवीर, दक्ष और दयादान करने में तत्पर रहता है। उसका एक पुत्र है–कामगजेन्द्र। कामगजेन्द्र अपने नाम के अनुरूप ही कामी है। उसकी अनेक स्त्रियों में प्रियंगुमती नाम की अति प्रिय रानी है।

एक दिन स्नान, विलेपन, वस्त्राभूषणों से सजधजकर काम गजेन्द्र अपनी प्रिया महादेवी (प्रियंगुमती) के साथ मत्त गज पर आरूढ़ हुआ। दोनों पति-पत्नी नगरी की शोभा देखने निकले।

गजारुढ़ कामगजेन्द्र की दृष्टि एक भवन की ओर उठ गई। भवन एक धनी वणिक का निवास था। वणिक्-पुत्री एक गवाक्ष में बैठी थी। उसकी सुन्दरता देख कामगजेन्द्र कामविह्वल हो गया। पति की इस दशा से महादेवी भी अनभिज्ञ न रही। पत्नी की उपस्थिति में कामगजेन्द्र कुछ कह न सका। वह मन की भावना मन में ही दबा गया।

राजमहल में पहुँचकर प्रियंगुमती ने पहला काम किया– उस वणिक्-पत्नी को बुलाने का। वणिक्-पत्नी आई तो उसने सम्मानपूर्वक बिठाकर पूछा–

सेठानीजी! आपकी पुत्री विवाह योग्य हो गई है, कहीं बात पक्की हो गई क्या?

सेठानी इस आकस्मिक प्रश्न से चकित रह गई। उसने प्रति प्रश्न किया—

आपको कैसे मालूम कि मेरी कोई पुत्री भी है और वह भी विवाह योग्य?

आज नगर-भ्रमण के समय स्वामी की दृष्टि उस पर पड़ गई थी।

वणिक्-पत्नी प्रश्न का रहस्य समझ गई। उसने मुस्कराकर कहा-

तो यह बात है, किन्तु एक आश्चर्य अवश्य हुआ।

क्या? प्रियंगुमती ने पूछा।

अपनी ही सपत्नी की तलाश स्वयं पत्नी करे, है न आश्चर्य की बात?

प्रियंगुमती ने हृदय के भाव व्यक्ति किये–

सेठानीजी! पति को धर्म-मार्ग पर रखना पत्नी का कर्तव्य है। आज मैंने स्वयं अपनी आंखों से उन्हें तुम्हारी पुत्री पर अनुरक्त देखा है। वे राजकुमार है, शक्तिशाली हैं, अपनी इच्छा, बलपूर्वक भी पूरी कर सकते हैं। इसलिए मैंने यही उचित समझा कि आपसे बात करूँ। यदि कन्या का सम्बन्ध अन्यत्र निश्चित न हुआ हो तो.....

राजकुमार के साथ विवाह हो जाये! –सेठानी ने बात पूरी कर दी।

इच्छा तो यही है, आगे जैसी आपकी मरजी।

मैं सहर्ष तैयार हूँ, वणिक्-पुत्री को क्षत्रिय वर मिले, इससे अधिक सौभाग्य क्या होगा, मेरी पुत्री का।

सेठानी की स्वीकृति पाकर प्रियंगुमती हर्षित हो गई, कहा–

आपका निर्णय उचित ही है।

कुछ ही दिनों में वणिक्पुत्री कामगजेन्द्र की पत्नी बनकर उसके अन्तःपुर में आ गई। वह प्रसन्न हो गया। किन्तु अकारण ही ऐसा कैसे हुआ? वणिक् ने अचानक ही अपनी पुत्री कैसे दे दी? यह ऊहापोह उसके मस्तिष्क में बनी रही। एक बार बातों ही बातों में वणिक्-पुत्री ने कह दिया कि हमारा सम्बन्ध महादेवी प्रियंगुमती के अनुग्रह से हुआ है। उन्होंने स्वयं ही मेरी माता को बुलाकर वह सम्बन्ध निश्चित किया था।

इस रहस्य के प्रगट होने पर कुमार ने प्रियंगुमती से स्नेहपूर्ण शब्दों में पूछा–

प्रिये! बिना कहे ही तुमने मेरे हृदयगत भाव कैसे जान लिए?

वह पत्नी ही क्या जो पति के हृदय में न रहे। मंद स्मित सहित प्रियंगुमती ने उत्तर दिया।

तुम सत्य कहती हो। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कुछ भी माँग लो। मैं दूँगा।

यदि आप प्रसन्न ही हैं तो मुझसे कभी छिपाव मत रखना। जो कुछ भी आप देखें, सुनें और अनुभव करें, सब कुछ मुझे स्पष्ट बता दिया करें।

कामगजेन्द्र ने हँसकर वचन दिया–

महादेवी! यह तो हर पत्नी का अधिकार होता है और प्रत्येक पति का कर्तव्य। फिर भी मैं तुम्हें वचन देता हूँ। कभी तुमसे छिपाव नहीं रखूँगा, सब कुछ तुम्हें बता दिया करूँगा।

समय व्यतीत होता रहा। कामगजेन्द्र अपने वचन का पालन करता रहा। वह सब कुछ अपनी प्रिया को बता देता था।

एक दिन एक चित्रकार पुत्र आया। कामगजेन्द्र को अभिवादन कर उसने एक चित्रफलक दिया। चित्र एक अति सुन्दर युवती का

था। कामगजेन्द्र ने उसे कल्पना-प्रसूत समझा। उसके मुख से एक लोकोक्ति निःसृत हुई–

भूप कवि चित्रका।
तीनों नरकां द्वार।।

चित्रकार व्याकुल हो गया इस उक्ति से, बोला–

आपका कथन मिथ्या है, कुमार! उक्ति कहने का कारण क्या है?

तीनों ही कल्पित रूप रचते हैं। राजा तो राजनीति में तरह-तरह के झूठ-फरेब करता ही है, हिंसा भी करता है और कवि अतिशयोक्तिपूर्ण झूठे वर्णन करता है, रहा चित्रकार सो वह तो कल्पित चित्र बनाता ही है।–हँसकर कामगजेन्द्र ने कहा।

तो क्या आप इस चित्र को कल्पित कमझते हैं?

है ही, इसमें समझने की क्या बात है?

यह आपका भ्रम है। यह चित्र एक जीवित युवती का है।

इतनी सुन्दर युवती इस पृथ्वी पर है? कामगजेन्द्र ने चकित होकर पूछा।

हाँ कुमार! यह सत्य है।

मुझे इसका परिचय बताओ।

चित्रकार ने परिचय दिया–

यह चित्र उज्जयिनी नगरी के अवंती नाम के राजा की पुत्री का है।

परिचय पाकर कामगजेन्द्र प्रसन्न हो गया। चित्र को ध्यानपूर्वक देखने लगा। ज्यों-ज्यों वह देखता, उसमें अनुरक्त होता गया। उसने चित्रकार से पूछा–

क्या यह अभी तक कुँवारी है?

हाँ कुमार!

तुम अभी यहीं हमारी अतिथिशाला में विश्राम करो। कहकर कामगजेन्द्र ने उसके आवास आदि की उचित व्यवस्था कराई और स्वयं चित्र लेकर प्रियंगुमती के पास पहुँचा। पति के हाथों में चित्र देखा और नयनों का अनुराग पत्नी ने पढ़ लिया। मंद स्मितपूर्वक स्वागत करते हुए कहा–

स्वागत, नाथ! यह हाथ में क्या ले आये?

चित्र देते हुए कामगजेन्द्र बोला–

इसे देखो प्रिये!

चित्र देखकर महादेवी मुस्करा उठी–

चित्र देखकर क्या करूँगी? अपनी इच्छा बताइये।

इच्छा..... इच्छा तो बस यही है कि कैसे भी.....

यह सुन्दरी मिल जाय। प्रियंगुमती ने पति की अधूरी बात पूरी कर दी और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

हँसो मत! इसे पाने का उपाय बताओ। कामगजेन्द्र ने कहा।

इस सुन्दरी का परिचय भी तो बताइये। आपको यह चित्र कहाँ से मिला? प्रियंगुमती ने पूछा तो कामगजेन्द्र ने सब कुख बता दिया।

प्रियंगुमती ने मन्द मुस्कान के साथ कहा–

जिसने आग लगाई है, वही बुझायेगा।

पहेलियाँ मत बुझाओ।

यह पहेली नहीं उपाय है।

रानी! यहाँ तो दिल बेचैन है और तुम्हें हँसी सूझ रही है।

पति की इस बात से पत्नी गम्भीर हो गई। उसने उपाय सुझाया–

नाथ! आप भी उसी चित्रकार के हाथों अपना एक सुन्दर सा चित्र बनवाकर भेज दीजिए।

उससे क्या होगा?

जैसे आप चित्र देखकर अनुरक्त हो गये, वैसे ही वह भो रीझ जायेगी।

क्या ऐसा होगा?

बिलकुल, ऐसा ही होगा।

कामगजेन्द्र को राह सुझाई दी। उसने भी उसी चित्रकार के हाथों अपना एक चित्र बनवाया और प्रभूत पुरस्कार देकर उसे उज्जयिनी भेज दिया।

यथासमय चित्रकार उज्जयिनी पहुँचा और राजा अवन्ती को वह चित्र दिखाया। राज-पुत्री ने भी उसे पसन्द कर लिया। अवन्ती राजा ने जैन की साँस ली–पुत्री को कोई वर तो पसन्द आया। उसने विवाह की स्वीकृति दे दी। अपने दूतों द्वारा सूचित करा दिया–विवाह हेतु शीघ्र पधारिए।

कामगजेन्द्र समाचार पाते ही अपनी पत्नी प्रियंगुमती को लेकर उज्जयिनी चल दिया। साथ ही उसका रक्षक दल भी था। अभी वह उज्जयिनी से दूर ही था कि सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगा। परिणामस्वरूप वन में ही शिविर डाल दिया। सभी लोग सो गए। कामगजेन्द्र अपनी रानी के शिविर में सो रहा था। आधी रात के समय कोमल कर-स्पर्श से उसकी नींद खुल गई। उसे दो सुन्दर युवतियाँ दिखाई पड़ी। अचकचाकर उठ बैठा और उनकी सुन्दरता निहारने लगा।

दोनों युवतियाँ अनुपम सुन्दर थी। दूध में अलता मिला रंग, पद्मकेशर से बने रक्तवर्णी अधर, धनुष भौंह, कमल नेत्र, अष्टमी के चन्द्रमा सा मस्तक, काले घुंघराले लम्बे बाल, शुक नासिका, कंबुग्रीवा, उन्नत वक्ष, कमलनाल से कर और कमल-पत्र जैसी हथेलियाँ, चन्द्रकिरण से नख, कदली-दल सी जाँघें–आपाद-मस्तक सौन्दर्य साकार था। नुपुरों की मधुर झंकार कानों में रस टपका रही थी। कामगजेन्द्र चकित रह गया। उसने पूछा–

आप लोग कौन हैं–मानुषी, देवी, किन्नरकन्या अथवा विद्याधरी?

हम लोग विद्याधरी हैं।–उन कन्याओं ने बताया।

आधी रात को मेरे पास आने का प्रयोजन?

प्रयोजन है, तभी तो आपको कष्ट दिया है।

बताओ।

कहीं आप निराश न लौटा दें।

मेरे कुल में द्वार पर आये व्यक्ति को निराश लौटाने की परम्परा नहीं है। तुम निस्संकोच कहो।

सुन्दरियाँ कुछ क्षण तक सोचती रहीं और फिर बोली–

महाभाग! तुम्हारे कुल की कीर्ति सुनकर ही हमने यहाँ तक आने का साहस किया है। हमारी आशा पूरी करोगे, त्रिवाचा भरो।

कुमार सोचने लगा–मैंने अपनी रानी को सब कुछ बताने का वचन दिया है, यदि इन्होंने कोई अकार्य बता दिया अथवा स्त्री को बिना सुने ही वचनबद्ध हो जाना विवेकहीनता है। क्या जाने कोई षड़यन्त्र ही हो? जंगल का बीच और अर्द्धरात्रि का समय। कुछ भी हो सकता है। विचारपूर्वक बोला–

विद्याधरियों! क्षत्रिय एक बात बोले हुए वचन का ही पालन करता है। और जो पुरुष अपने वचन का मोल नहीं जानता वह लाख बार भी वचनबद्ध हो तो क्या लाभ?

(क्रमशः)

संकलन–

सृजन स्त्रोत श्रुत आराधना

सृष्टि में दुःख का अनुबन्ध अज्ञानता के साथ होता है, जो मानव अज्ञानता के साथ दैनिक जीवन को जीता है और जो भी कार्य करता है, वे सभी कार्य दुःखदायी होते है। इसलिए जो सुख का स्त्रोत है, ऐसे सम्यग्ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए। आचार्यों की वाणी का अध्यन, चिन्तन, मनन, मानव के जीवन को मौलिकता प्रदान करती है। इसलिए कहा– अब तक जितने भी ग्रन्थ लिखे गये है, आचार्यों ने, ऋषि मुनियों ने, नीतिकारों ने, ज्ञान का आचरण करके उससे प्राप्त अनुभव को अपनी लेखनी का आधार बनाया। ऐसे महान आत्माओं ने, जिन्होंने ज्ञान को आचरण का विषय बना, उससे प्राप्त अनुभव अपनी लेखनी का विषय बनाया है। सुनिश्चित ही वे ग्रन्थ मानष मन की ग्रन्थी को खोलने में और परमार्थिक जीवन जीने की कला निपुणता प्रदान करने में और संसार से पार लगाने में सार्थक कारण सिद्ध होते हैं, वे ग्रन्थ।

वास्तव में ज्ञान मात्र आत्महित ही नहीं करता, अपितु हमारे दैनिक जीवन का चौमुखी विकास भी करता है, क्योंकि श्रद्धा, भक्ति, समर्पण, विनय, विवेक और आत्म हितैषी उद्देश्य की मूर्ति के लिए इन पाँच लक्षणों से युक्त किया गया। शास्त्रों का अध्यन से आत्महित करने का ज्ञान ही होता है, धार्मिक ज्ञान ही प्राप्त होता है, अपितु परोक्ष रूप से, प्रत्यक्ष रूप से, शास्त्रोक्त सम्यग्ज्ञान का अभ्यास पंच लक्षणों से युक्त होते हुए जब कोई ज्ञान अर्जन करता है, तो अनन्तों कर्मों की निर्जरा होती है, साथ में जो गुणानुराग से पुण्य का संचय होता है, सातिशय पुण्य के प्रताप से जीवन में हर तरह की जीवन यापन संबंधी वस्तुएं सुलभ रहती हैं, इसलिए कहा है कि ज्ञान गुणारागी मानव अपना हित तो करता ही है, इस तरह जो परमार्थ की भावना से जीता है, जब तक वह संसार में रहता है। तबतक सातिशय पुण्य के प्रभाव से और ज्ञान के पुँज से हर दृष्टीकोण से वह तन मन से निरोग, घर परिवार में धन धान्य की परिपूर्णता रहती हैं और जीवन में सुख शांति का संर्वधन होता हैं। प्रत्यक्ष में अनुभव किया जा सकता है और परोक्ष से भी शास्त्रों में घटना क्रम पढ़ने में आता है और सुनने को भी मिलता है।

मुनि श्री प्रकर्ष सागरजी महाराज

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1.	Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:		
	Vol - 1 (satakas 1- 2)	Price : Rs.	150.00
	Vol - 2 (satakas 3- 6)		150.00
	Vol - 3 (satakas 7- 8)		150.00
	Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6		150.00
2.	James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)	Price : Rs.	100.00
3.	P. C. Samsukha - Essence of Jainism ISBN : 978-81-922334-4-4	Price : Rs.	15.00
4.	Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, ISBN : 978-81-922334-7-5	Price : Rs.	50.00
5.	Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani	Price : Rs.	15.00
6.	Ganesh Lalwani - Jainthology ISBN : 978-81-922334-2-0	Price : Rs.	100.00
7.	Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains ISBN : 978-81-922334-3-7	Price : Rs.	100.00
8.	Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India ISBN : 978-81-922334-5-1	Price : Rs:	100.00
9.	Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8	Price : Rs.	30.00
10.	Smt. Lata Bothra- The Harmony Within	Price : Rs.	100.00
11.	Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira	Price : Rs.	100.00
12.	Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity	Price : Rs.	100.00

Hindi :

1.	Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	20.00
3.	Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	30.00
4.	Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	50.00
5.	Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira	Price : Rs.	60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN: 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN: 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
हिन्दी मासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
बंगला मासिक पत्रिका	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects, Interiors, Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

Change yourself and change your world

Shree Jin Chandra Suriji Maharaj
Founder of SATYA SADHNA

SITAL GROUP OF COMPANIES

Deals in :-

- ☐ Financial Services.
- ☐ Construction of Commercial & Residential Buildings.

BIKASH SINGH CHHAJER
"Centre Point" 21, Hemanta Basu Sarani
2nd Floor, Room No.-226, Kolkata-700001
Phone: (033) 22429265/22109228
Fax: (91-33) 22429265. Mobile: 9831022577
email: sitalgroupofcompanies@yahoo.co.in